International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(6): 273-279

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(6): 273-279
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-09-2021
Accepted: 24-10-2021

डॉ. रमा सिंह
सह-आचार्या, संस्कृत विभाग,
देशबन्धु महाविद्यालय,
कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

डॉ. मुकेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, संस्कृत
विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय,
कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रमा सिंह
सह-आचार्या, संस्कृत विभाग,
देशबन्धु महाविद्यालय,
कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

मनुस्मृति में निरूपित पञ्चमहायज्ञ

डॉ. रमा सिंह एवं डॉ. मुकेश कुमार मिश्र

सारांश
वैदिक-लौकिक-सूत्र-स्मृति साहित्यादि प्राचीन ग्रन्थों में यज्ञ की पर्याप्त चर्चा हुई है। यज्ञों में भी पञ्चमहायज्ञों के विधान का उल्लेख प्रायः सभी व्यवस्थाकारों ने किया है जो विशेषरूप से गृहस्थाश्रम से सम्बद्ध है तथा जिसके अनुष्ठान का उद्देश्य लौकिक एवं पारलौकिक सुख, शान्ति एवं समृद्धि के साथ-साथ ब्रह्माण्डीय जीवों के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वहण है। आज भी वैश्विक सुख, शान्ति और समृद्धि के साथ-साथ पर्यावरणादि की दृष्टि से यज्ञविधान उपयुक्त एवं वैज्ञानिक है। प्रस्तुत शोधलेख में मनुस्मृति में निरूपित पञ्चमहायज्ञों के विधान एवं महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है।

कूट शब्द: यज्ञ, पञ्चमहायज्ञ, गृहस्थाश्रम, आश्रम, ब्रह्मयज्ञ, दैवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ, बौद्धभिक्षु, क्षपणकादि।

प्रस्तावना
इज्यते हविर्दीयतेऽत्र अथवा **इज्यन्ते देवताऽत्र इति वा** अर्थात् जहाँ देवताओं को हवि दी जाती है - इस व्युत्पत्ति के आधार पर √ यज् धातु से "यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्" (३.३.९०) सूत्र से नङ् प्रत्यय लगकर यज्ञ शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ याग, अध्वर, सप्ततन्तु, मख, क्रतु, इष्टि, वितान, स्तोम, मन्यु, आहव, संस्तर, सवन, सव, हव, अभिषव, होम, हवन, मह, यज्ञसम्बन्धी कृत्य, पूजा-कार्य, कोई भी पवित्र या भक्ति सम्बंधी क्रिया, प्रत्येक गृहस्थ विशेषतः ब्राह्मण के प्रति पाँच ऐसे भक्तिपरक कृत्य, जिन्हें प्रतिदिन करने पड़ते हैं, वे हैं - भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदि। यहाँ उल्लिखित पाँच यज्ञ ही समष्टि रूप में पञ्चमहायज्ञ कहलाते हैं। वैदिक पर्याय के रूप में भी वेन, अध्वर, मेध, विदथ, नार्य्य, सवन, होत्र, इष्टि, देवताता, मख, विष्णु, इन्दु प्रजापति और धर्म - ये यज्ञ के पन्द्रह नाम हैं।

कोशग्रन्थ में त्रिविध यज्ञ की चर्चा प्राप्त होती है, यथा - सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक यज्ञ। यहाँ गृहस्थों के द्वारा करने योग्य पञ्चयज्ञ का भी उल्लेख मिलता है और गरुड़ पुराण के एक कथन के द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है, कथन है[1] -

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।

संस्कृत-आंग्ल कोश में यज्ञ शब्द का अर्थ प्राप्त होता है - "An act of worship. Any Pious and devotional work (Every householder, but particularly a Brahman, has to perform five such devotional acts every-day their names are भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ and ब्रह्मयज्ञ which are Collectively called the five great sacrifices); (See महायज्ञ and the five words separately), A sacrifice, Sacrificial Rite, any offering or oblation."[2]

प्रायः सभी व्यवस्थाकारों ने पञ्चयज्ञ की व्यवस्था का विधान किया है तथा प्राचीनता की दृष्टि से वैदिक काल से ही इसके सम्पादन की व्यवस्था रही है। कतिपय सूत्रकारों एवं व्यवस्थाकारों ने पञ्चमहायज्ञों की गणना संस्कारों में भी की है। इन महायज्ञों का सम्पादन करने में किसी व्यावसायिक पुरोहितों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती है। यहाँ गृहस्थ की गौण रूप में अवस्थिति होती है। पञ्चमहायज्ञों का मुख्य उद्देश्य विधाता, प्राचीन ऋषियों, पितरों, जीवों, मनुष्यों एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जीवों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वहण करना है। यहाँ नैतिकता, आध्यात्मिकता, प्रगतिशीलता एवं सदाशयता का दर्शन अपेक्षाकृत अधिक होता है। पञ्चमहायज्ञों का सम्बन्ध गृहस्थ आश्रम से है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्य लौकिक एवं पारलौकिक सुख, शान्ति एवं समृद्धि के लिए जिन पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान करता है, वे हैं - ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ एवं नृयज्ञ या मनुष्ययज्ञ। मनु का मानना है कि स्वाध्याय, व्रत, होम, त्रैविद्य, इज्या, पुत्रोत्पत्ति, महायज्ञों अथवा यज्ञों से शरीर ब्रह्मप्राप्ति की योग्यता धारण कर लेता है।[3] उनका कहना है कि गृहस्थ को विवाह के समय स्थापित अग्नि में यथाविधि गार्हस्थ्य कर्म अर्थात् होम करना चाहिए तथा उसी में पञ्चयज्ञों का विधान और दैनिक भोजनपाक करना चाहिए। उनका मानना है कि चूल्हा, चक्की, बुहारी, ओखल और जल का घड़ा- ये पाँच हिंसा के स्थान माने जाते हैं, जिन्हें कार्य में लगाने से गृहस्थ पाप से सम्बद्ध हो जाते हैं।[4] इससे होने वाला पाप का नाश करने के लिए अथवा उक्त कार्य से होनेवाले पाप के प्रायश्चित्त के लिए गृहस्थों को प्रतिदिन पञ्च महायज्ञ सम्पादन का निर्देश दिया गया है, जिनके करने से गृहस्थ को हिंसा का दोष नहीं लगता है।[5] आचार्य कहते हैं कि यथाशक्ति पञ्चमहायज्ञ को करनेवाला घर में वास करते हुए भी हिंसा के दोषों से लिप्त नहीं होता है।[6] मनु ने देवता, अतिथि, भृत्य, पितर आदि के साथ अपने पोषण का भी विधान किया है।[7] मनु की दृष्टि में प्राचीन आचार्यों ने पञ्चमहायज्ञों का उल्लेख अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्महुत और प्राशित नाम से किया है। उनकी दृष्टि में जप को अहुत, होम को हुत, भूतबलि को प्रहुत, श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा ब्राह्महुत और पितरों के तर्पण को प्राशित कहा जाता है। स्पष्ट है कि यहाँ अहुत अर्थात् जप ब्रह्मयज्ञ है, हुत अर्थात् होम देवयज्ञ है, भूतबलि अर्थात् प्रहुत भूतयज्ञ है, ब्राह्महुत अर्थात् ब्राह्मणों की पूजा मनुष्ययज्ञ है तथा प्राशित अर्थात् पितृतर्पण पितृयज्ञ है।[8] इसी क्रम में मनु ने इस बात पर बल दिया है कि गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ है।[9] ऋषि, पितर, देवता, भूत और अतिथि गृहस्थों से आशा करते हैं। अतः गृहस्थ आश्रम में रहने वाले विद्वान् मनुष्य को ऋषि, पितरादि के लिए पञ्चमहायज्ञ करने का निर्देश दिया गया है।[10] अधिकांश व्यवस्थाकारों की भाँति मनु ने भी जिन पाँच महायज्ञों की चर्चा की है, वे हैं - ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ,

---

1 शब्दकल्पद्रुम, भाग-4, पृ. 6; वाचस्पत्यम्, भाग-6, पृ. 4768-4769; संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 823.

2 Sanskrit-English Dictionary, p. 451.

3 स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।। - मनुस्मृति, 2/28

4 पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाह्यन्।। - *वही*, 3/68

5 तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्।। - *वही*, 3/69

6 पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसिन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते।। - *वही*, 3/71

7 देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न सजीवति।। - *वही*, 3/72

8 अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च।
ब्राह्म्यं हुतं प्राशितं च पञ्चज्ञानप्रचक्षते।।
जपोऽहुतो, हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः।
ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम्।। - मनुस्मृति, 3/73-74

9 यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।। - *वही*, 3/78

10 ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानतः।। - *वही*, 3/80

देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ अथवा मनुष्ययज्ञ।[11] इन पञ्च महायज्ञों का क्रमिक विवेचन इस प्रकार है -

1. ब्रह्मयज्ञ

ब्रह्मयज्ञ से तात्पर्य प्रतिदिन वेद का अध्ययन अथवा स्वाध्याय से है। ब्राह्मणग्रन्थ में इस बात की चर्चा है कि जो दिन-प्रतिदिन स्वाध्याय अथवा वैदिक पाठ करता है उसे दान देने या पुरोहित को धन-धान्य से पूर्ण सारा संसार देने से प्राप्त होनेवाले फल की अपेक्षा तिगुना फल प्राप्त होता है। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मयज्ञ करने से देवगण प्रसन्न हो जाते हैं तथा ब्रह्मयज्ञ करनेवाले को सुरक्षा, सम्पत्ति, आयु, बीज, उसका सम्पूर्ण सत्त्व तथा सभी प्रकार के मंगलकारी पदार्थ प्रदान करते हैं एवं उसके पितरों को घी एवं मधु की धारा से सन्तुष्ट करते हैं। ब्रह्मयज्ञ करने वाले को दीर्घायु, दीप्ति, चमक, सम्पत्ति, यश, आध्यात्मिक उच्चता एवं भोजन की प्राप्ति होती है। प्राचीन ग्रन्थों में ब्रह्मयज्ञ के रूप में वेद के अतिरिक्त अनुशासन या वेदाङ्, विद्या (सर्प एवं देवजन विद्या), वाकोवाक्य, धार्मिक वाद-विवाद, इतिहास-पुराण, गाथाएँ, नाराशंसी (नायकों की प्रशंसा में कही गई कविताएँ), कल्प (श्रौतकृत्य सम्बन्धी ग्रन्थ) आदि की चर्चा प्राप्त होती है। जहाँ तक मनुस्मृति का प्रश्न है तो मनुस्मृतिकार ने वेदाध्ययन को ब्रह्मयज्ञ की श्रेणी में परिगणित किया है।[12] उनका मानना है कि यहाँ वेदाध्ययन से ऋषियों की विधिपूर्वक पूजा का विधान निर्दिष्ट है।[13]

2. देवयज्ञ

देवयज्ञ के अन्तर्गत देवताओं का पूजन, बलि, घृतादि से अग्नि में हवनादि कार्य का सम्पादन होता है। ऐसा माना जाता है व्यक्ति का भौतिक सुख देवताओं की कृपा से ही सम्भव है और इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य पूजादि के द्वारा उन्हें प्रसन्न करें। लोग यह मानते थे कि अग्नि में दी जानेवाली आहुति को देवगण स्वयं उपस्थित होकर ग्रहण करते थे। इस प्रकार अग्नि में समिधा डालने से ही देवयज्ञ का सम्पादन माना जाता है। यहाँ देवता के नामोच्चारण के साथ स्वाहा शब्द का उच्चारण करते हुए अग्नि में हवि या कम से कम एक समिधा डालने का प्रावधान रहा है। यहाँ विभिन्न देवताओं के लिए होम किये जाने का उल्लेख मिलता है यथा - अग्निहोत्र के देव अर्थात् सूर्य या अग्नि एवं प्रजापति, सोम, वनस्पति, अग्नि एवं सोम, इन्द्र एवं अग्नि, द्यौ एवं पृथिवी, धन्वन्तरि, इन्द्र विश्वेदेवा, ब्रह्मा या प्रजापति आदि। मनु का भी कहना है कि देवयज्ञ में होम करने का विधान है तथा यहाँ हवन से देवताओं की विधिपूर्वक पूजा की जाती है।[14]

3. भूतयज्ञ

इसे बलिहरण भी कहा जाता है। यहाँ इस यज्ञ के अन्तर्गत देवयज्ञवाले देवताओं, जलों, जड़ी-बूटियों, वृक्षों, घरों व कुलदेवताओं, जहाँ पर घर बना है उस स्थल के देवताओं, इन्द्र तथा उनके अनुचरों, यम तथा उनके अनुचरों, वरुण तथा वरुण के अनुचरों, सोम तथा उनके अनुचरों, ब्रह्मा तथा ब्रह्मा के अनुचरों, विश्वेदेवों, दिन में चलने वाले सभी प्राणियों एवं उत्तर में राक्षसों को बलि दी जाती है। यहाँ 'पितरों को स्वधा' शब्दों के साथ शेषांश को दक्षिण में छोड़ा जाता है। बलिहरण काल में यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर रखे जाने का विधान प्राप्त होता है। बलिहरण रात्री एवं दिन दोनों ही कालों में सम्भव है तथा दिन में चलने वाले जीवों एवं रात्रि में चलने वाले प्राणियों को उच्चारण के साथ बलि प्रदान की जाती है। भूतयज्ञ के विषय में देखा गया है कि यहाँ बलि अग्नि में न देकर भूमि पर प्रदान की जाती है। बलि प्रदान करने से पूर्व भूस्थल को हाथ से स्वच्छ कर वहाँ जल छिड़का जाता है, पुनः उस स्वच्छ स्थल पर बलि रखकर उस पर जल छोड़ा जाता है। मनु का भी मानना है कि वैश्वदेव के प्रति अच्छी तरह से हवन करके, सभी दिशाओं में प्रदक्षिणा करके अनुचर सहित इन्द्र, यम, वरुण और सोम के लिए बलि प्रदान की जाती है। इस प्रकार चारों दिशाओं में बलिप्रदान करने की परम्परा रही है।[15] बलिप्रदान करने के क्रम में दिशाओं के अतिरिक्त द्वार पर मरुद्गणों को, जलों के लिए जल में, वनस्पतियों के लिए मूसल और ओखली में, घर के शिखर या उत्तर-पूर्व दिशा की लक्ष्मी को, दक्षिण-पश्चिम दिशा में भद्रकाली को, वास्तु के मध्य

---

11 अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो देवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान्यथाविधि।
पितृन्श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा। - *वही*, 3/70 और 3/81

12 मनुस्मृति, 3/70

13 *वही*, 3/81

14 *वही*, 3/70 और 3/81

15 *वही*, 3/87

ब्रह्म और वातोष्पति को, विश्वदेव के लिए आकाश में, दिवाचारियों के लिए दिन में तथा रात्रिचारियों के लिए रात्रि में बलि का विधान किया गया है।[16] इसी प्रकार सर्वात्मभूति के लिए वास्तु के पिछले भाग में, पितरों के लिए दक्षिण दिशा में सभी बची हुई बलि को अर्पित करने का निर्देश दिया गया है। मनु ने कुत्ते, पतित लोगों, चाण्डालों, पापरोगियों (कुष्ठ एवं क्षयरोग वालों), कौओं और मकोड़ों को पृथ्वी पर धीरे से बलि प्रदान करने की बात कही है।[17] मनु ने इस बात का उल्लेख किया है कि स्त्रियाँ भी मन्त्रेच्चारण किये बिना सायंकाल में पकाये गये अन्न की बलि प्रदान कर सकती हैं।[18] मनु का कहना है कि जो ब्राह्मण सभी भूतों की नित्य पूजा करता है वह सरल मार्ग से तेजस्वी स्वभाववाला होकर परम पद को प्राप्त करता है। वस्तुतः मनु ने भूत बलि को स्पष्ट करते हुए कहा है कि अन्न की बलि देना भूतयज्ञ है। यहाँ बलिकर्म के द्वारा भूतों की विधिपूर्वक पूजा की जाती है।[19]

4. पितृयज्ञ

पितृयज्ञ का आशय मृत पितरों की शांति के लिये किये जाने वाले यज्ञ से है। यहाँ इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि यहाँ श्राद्ध के द्वारा पितरों की विधिपूर्वक पूजा की जाती है। स्पष्ट है कि इस यज्ञ के अन्तर्गत मृत पितरों के लिए तर्पण, श्राद्धादि का विधान किया जाता है। मनुस्मृति में पितृयज्ञ की चर्चा मुख्यतः तीन सन्दर्भों में की गई है - (अ) बलिहरण द्वारा, (ब) प्रतिदिन श्राद्ध द्वारा और (स) तर्पण द्वारा।

मनु कहते हैं कि बलि अर्पित करने के क्रम में सभी शेषांश बलि को पितरों के लिए दक्षिण दिशा की ओर प्रदान करने का विधान है।[20] प्राचीनावीति से यहाँ बलि का निर्देश किया गया है, जहाँ उल्लेख है - स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीति शेषं दक्षिणामुखम् निनयेत्। मनु कहते हैं कि तिल, व्रीहि तथा यवादि अन्नों से, जल से, दूध से, मूल से एवं फल से प्रतिदिन पितरों के लिए प्रीतिपूर्वक श्राद्ध किया जाना चाहिए तथा यहाँ प्रतिदिन पितरों के निमित्त कम से कम एक ब्राह्मण को भोजन कराने का निर्देश दिया गया है।[21] प्रतिदिन होनेवाले श्राद्ध में न तो पिण्डदान का विधान है और न ही पार्वण श्राद्ध की विधि एवं नियमों का पालन ही होता है। मनु का मानना है कि स्नान करने के बाद ब्राह्मणों के द्वारा किये गये जल-तर्पण से सभी नित्य श्राद्ध का फल प्राप्त हो जाता है।[22] मनु का कहना है कि द्विजातियों के लिए देवकार्य की अपेक्षा पितृकार्य विशिष्ट होता है क्योंकि देवकार्य पितृ कार्य का परिपूरक माना गया है।[23] यहाँ पहले पितरों की रक्षा करनेवाले देवताओं को नियुक्त या नियन्त्रित किया जाता है क्योंकि रक्षा से रहित श्राद्ध को राक्षस नष्ट कर देते हैं।[24] देवकर्म से ही श्राद्धकर्म का अन्त करने का विधान है, न कि पितृकर्म से।[25] गोमयलिप्त पवित्र स्थानों, नदी के तटवर्ती स्थलों तथा एकान्त स्थलों में श्राद्ध करने से पितर सन्तुष्ट होते हैं - ऐसा माना जाता है।[26] अग्नि, सोम और यम को उद्दिष्ट कर पर्युक्षण करके हवि देने के पश्चात् नियमानुसार पितरों को सन्तुष्ट किया जाता है। श्राद्धदेव अर्थात् श्राद्धान्न के लिए देवता के समान श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा श्राद्ध सम्पादित कराया जाता है। यहाँ हवन से शेष अन्न से सावधानीपूर्वक तीन पिण्ड बनाकर जलपर्युक्षण विधि से दक्षिण की ओर मुख करके निर्वपन का विधान है। लेप के भेजन करनेवाले पितरों के लिए सावधान होकर विधिपूर्वक उन पिण्डों को कुशाओं पर रखकर हाथ पोंछने का विधान किया गया है।[27] पुनः आचमन करके उत्तर दिशा की ओर मुख करके धीरे से तीन प्राणायाम करके वेदज्ञ विद्वान् के द्वारा छः ऋतुओं को और पितरों को प्रणाम किया जाता है। फिर अवशिष्ट जल को धीरे-धीरे क्रमशः पिण्डों के समीप छिड़का जाता है और फिर उसी क्रम से सूँघा जाता है। पिण्डों में थोड़ी मात्र निकालकर क्रम से उस अन्न को बैठे हुए ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन से पूर्व खिलाया जाता है।[28] यहाँ पितृपिण्डांश को पिता के नाम से निमन्त्रित ब्राह्मण को, पितामह के पिण्डांश को पितामह के नाम से निमन्त्रित ब्राह्मण को तथा प्रपितामह के पिण्डांश को प्रपितामाह के नाम से निमन्त्रित ब्राह्मण को खिलाने का विधान है।[29] आगे उन ब्राह्मणों के हाथों में पवित्री के साथ तिलोदक देकर 'एषां स्वधाऽस्तु' कहते हुए उन पिण्डों के थोड़े अंश को देने

16 मनुस्मृति, 3/88, 3/89, 3/90
17 *वही*, 3/91, 3/92
18 *वही*, 3/121
19 *वही*, 3/70 और 3/81
20 *वही*, 3/91
21 *वही*, 3/82-83
22 *वही*, 3/282
23 *वही*, 3/203
24 मनुस्मृति, 3/204
25 *वही*, 3/205
26 *वही*, 3/206
27 *वही*, 3/214-216
28 *वही*, 3/217-219
29 *वही*, 3/219

का प्रावधान है।[30] विधिपूर्वक पिण्डदान की प्रक्रिया सम्पन्न होने पर पिण्डों को गाय, ब्राह्मण, बकरे को खिलाने की चर्चा है या अग्नि अथवा जल में डालने का विधान है। मनु यहाँ अन्य लोगों के मत को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण भोजन के बाद पिण्डदान किया जाता है। यहाँ पिण्ड कुछ पक्षियों को खिलाया जाता है अथवा जल या अग्नि में डाला जाता है।[31] ब्राह्मणों के विसर्जन के बाद गृहबलि का विधान किया जाता है। मनु कहते हैं कि पितरों के लिए शास्त्रोक्त विधि से दी गई हवि चिरकाल तक अनन्त फलदायी होती है।[32] उनका कहना है कि सच्ची श्रद्धा से युक्त होकर विधिपूर्वक पितरों को जो कुछ प्रदान किया जाता है वह उनके लिए परलोक में अनन्त फलवाला और अक्षय होता है। पितृयज्ञ के सम्पादनक्रम में ब्राह्मणों को विदा करके सावधान रहते हुए मौन धारण कर दक्षिण दिशा में देखता मुख करके पितरों से इस वरदान की अपेक्षा की जाती है कि हमारे वंश में दाता की वृद्धि हो, वेदों की वृद्धि हो, सन्तान का सम्वर्द्धन हो, धनधान्य व समृद्धि से युक्त हों और हमारी श्रद्धा में किसी तरह की न्यूनता न हो पाये।[33] मनु ने रात्री प्रहर में श्राद्ध का निषेध किया है क्योंकि रात्रिकाल में श्राद्ध होने से उनमें विनाशकारी गुण विद्यमान रहते हैं। मनु की दृष्टि में अग्निहोत्री ब्राह्मण को अमावस्या के दिन पितृयज्ञ करके प्रतिमाह पिण्डान्वाहार्यक नामक श्राद्ध करना चाहिए।[34] अन्य विद्वानों द्वारा उल्लिखित पितरों के मासिक श्राद्ध को अन्वाहार्य नाम से जाना जाता है।[35] मनु ने प्रतिमाह श्राद्ध करने का विधान तो किया ही है साथ ही यह भी कहा है कि यदि यह असम्भव हो तो हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में अर्थात् चार-चार माह में एक बार एवं वर्ष में तीन बार श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। स्पष्ट है कि प्रतिदिन होने वाले श्राद्ध में पिण्डदान की न चर्चा करते हुए भी मनु ने चतुर्मासिक एवं मासिक श्राद्धक्रम में पिण्डदान की चर्चा की है तथा उसका विस्तृत निरूपण किया है। स्पष्ट है कि मनु ने पितृयज्ञ के तीन प्रकारों का निरूपण किया है।

5. नृयज्ञ अथवा मनुष्ययज्ञ

मनु के अनुसार अतिथिपूजन अर्थात् अतिथि का पूजन, सत्कार या सम्मान नृयज्ञ अथवा मनुष्ययज्ञ कहलाता है।[36] वे यह भी कहते हैं कि अन्न से मनुष्यों का विधिपूर्वक सत्कार मनुष्ययज्ञ है।[37] औपनिषदिक वाक्य भी है - अतिथिदेवो भव अर्थात् अतिथि को देवतुल्य मानना चाहिए और उसका सत्कार करना चाहिए। अतिथि की व्युत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए मनु ने भी कहा है कि एक रात तक निवास करनेवाला ब्राह्मण अतिथि कहलाता है। चूँकि वह नित्य नहीं रहता है इसलिए उसे अतिथि कहा जाता है।[38] कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जो पूरे दिन या पूरी तिथि में नहीं रुकता है वह अतिथि कहलाता है। मनु की दृष्टि में अतिथि वह है जो अन्य ग्राम का वासी होता है तथा एक रात्रि तक वास करने के लिए आता है। मनु कहते हैं कि सायंकालीन सूर्य के डूब जाने पर भी अतिथि का आगमन होता है तो गृहस्थ को निर्देश है कि वह उन्हें विमुख न करें।[39] समय में अथवा कुसमय में आए हुए अतिथि को भूखा नहीं रखने की बात गृहस्थों से कही गई है तथा गृहस्थों को निर्देश दिया गया है कि स्वयं भक्ष्य पदार्थों को ही अतिथि को खिलाना चाहिए। उनका स्पष्ट मानना है कि एक ही ग्राम का निवासी है, मित्र अथवा सहपाठी है या भोजन के लिए आमन्त्रित है, ऐसा व्यक्ति अतिथि नहीं कहलाता है। यद्यपि मनु ने कहा है कि बिना अतिथिभाव के प्रेम के कारण मित्रादि घर आते हैं, तो उन्हें पत्नी के साथ यथाशक्ति भोजन कराना चाहिए।[40] मनु ने यह व्यवस्था दी है कि नवीन वधूओं, कन्याओं, रुग्णों और गर्भिणी स्त्रियों को अतिथियों के आगे ही बिना सोचे भोजन करा देना चाहिए।[41] मेधातिथि ने उक्त प्रसंग का अर्थ समकाल में भोजन कराना स्वीकार किया है अर्थात् अतिथि के साथ ही उक्त लोगों के भोजन का विधान किया है। वे कहते हैं कि अतिथि का सम्मान धन देनेवाला, आयु बढ़ानेवाला, यश देनेवाला तथा स्वर्ग को प्राप्त करानेवाला होता है। इस बात की भी चर्चा है कि वैश्वदेव के समाप्त हो जाने पर यदि दूसरे अतिथि का आगमन होता है तो उसे भी यथाशक्ति भोजन कराना चाहिए तथा उससे बलि को भी नहीं निकालना चाहिए।[42] मनु ने यह व्यवस्था दी है कि मित्र, सम्बन्धी और प्रभु होने पर भी ब्राह्मण के घर में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अतिथि नहीं कहे जाते हैं।[43] तात्पर्य यह है कि उत्कृष्ट जाति का होने से जिस प्रकार

30 *वही*, 3/223
31 *वही*, 3/259-60
32 *वही*, 3/265
33 मनुस्मृति, 3/257-258
34 *वही*, 3/122
35 *वही*, 3/123
36 *वही*, 3/70
37 *वही*, 3/81
38 *वही*, 3/102
39 *वही*, 3/105
40 *वही*, 3/113
41 *वही*, 3/114
42 मनुस्मृति, 3/108
43 *वही*, 3/110

ब्राह्मण के घर में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को अतिथि नहीं कहा गया है उसी प्रकार क्षत्रिय के घर में वैश्य तथा शूद्र एवं वैश्य के घर में शूद्र अतिथि नहीं हो सकते हैं। फिर भी मनु का कहना है कि यदि अतिथिधर्म से क्षत्रिय ब्राह्मण के घर आता है तो ब्राह्मण के भोजन के उपरान्त इच्छानुसार क्षत्रियों को भोजन कराना चाहिए। इसी तरह अतिथिधर्म वाले वैश्य और शूद्र के आ जाने पर दोनों को दयापूर्वक नौकरों के साथ भोजन कराने का विधान किया गया है।

मनु की व्यवस्था है कि वेदविरुद्ध चिह्न और व्रत धारण करनेवाले बौद्धभिक्षु तथा क्षपणकादि, जिसे पाखण्डी कहा गया है, निषिद्ध कर्मों से जीवन यापन करने वाले विकर्मस्थ लोग, विलाव की तरह जीविका करनेवाले वैडालव्रतिक, वेदों में श्रद्धा न करनेवाले शठ, वेदविरोधी तर्कों का आश्रय लेनेवाले हेतुक, बगुला की तरह वृत्ति करनेवाले अर्थात् वकवृत्ति वाले अतिथियों की वाणीमात्र से भी अर्चना या उनका सत्कार नहीं करना चाहिए।[44] यद्यपि ऐसे अनेक व्यवस्थाकार हैं जिन्होंने मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा है कि थका-माँदा, भूखा-प्यासा अतिथि चाहे वह शूद्र हो या चाण्डाल जाति का हो या अन्य किसी प्रतिलोम जाति का हो उन्हें भोजन प्रदान करना चाहिए। साथ ही थकी-माँदी, भूखी-प्यासी स्थिति में आये नास्तिक, धर्मविद्वेषी या पतित के आने पर उसे पका हुआ भोजन न देकर अन्न देना चाहिए। यहाँ अतिथि सत्कार का आशय है - आगे बढ़कर अतिथि का स्वागत करना, पादप्रक्षालन के लिए जल देना, आसन देना, दीपक जलाकर रख देना, भोजन एवं ठहरने का स्थान देना, व्यक्तिगत ध्यान देना, सोने के लिए खटिया-बिछावन देना और जाते समय कुछ दूर तक साथ चलना। मनु भी कहते हैं कि आये हुए अतिथि के लिए आसन और जल देना और पुनः यथाशक्ति सत्कार करके विधिपूर्वक अन्न प्रदान करना ही आतिथ्य सत्कार है। मनु ने भी आसन, निवास स्थान, शय्या, जाते समय साथ चलने जैसे सेवासत्कार की चर्चा की है।[45] मनु के अनुसार स्वागतक्रम में क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के अतिथियों के लिए क्रम से कुशल, अनामय, क्षेम (कुशल) और आरोग्य शब्दों से स्वागत करने का विधान है। आतिथ्य सत्कार न करने वाले व्यक्ति की मनु ने अतिशय निन्दा की है। वस्तुतः अतिथि-सत्कार की एकमात्र प्रेरक शक्ति सार्वभौम दया भावना को स्वीकार किया गया है। माना यह जाता है कि बिना आतिथ्य सत्कार के गृहस्थ के घर में ब्राह्मण के रहने पर गृहस्थ का समस्त पुण्य ब्राह्मण को प्राप्त हो जाता है। आतिथ्य सत्कार के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति एवं समस्त आपदाओं से मुक्ति मिलती है। अतिथि के आने पर उनसे पहले भोजन ग्रहण करनेवाले गृहस्थ की सम्पत्ति, पशु और पुण्य नष्ट हो जाते हैं। मनु का मानना है कि नववधुओं, कन्याओं, रोगियों और गर्भिणी स्त्री के साथ-साथ अतिथि को भोजन दिये बिना स्वयं भोजन करने वाला कुत्तों और गिद्धों द्वारा भक्ष्य हो जाता है। कहा गया है कि गृहस्थ तथा उनकी पत्नी को चाहिए कि वे ब्राह्मणों, नौकरों को भोजन करने के बाद ही अवशिष्ट भोजन को ग्रहण करें। मनु कहते हैं कि जो अपने अतिथियों की किसी तरह परवाह किये बिना केवल अपने लिए भोजन पकाता और खाता है, वह केवल पाप को खाता है किन्तु वास्तविक भोक्ता वही होता है जो देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर और गृहदेवताओं को पूजकर, उन्हें खिलाकर स्वयं भोजन करता है। मनु के अनुसार ब्राह्मणों एवं अतिथियों के खा लेने के बाद बचा हुआ अन्न अर्थात् भुक्तशेष विधस एवं यज्ञ से बचा हुआ अन्न अर्थात् यज्ञशेष अन्न अमृत कहलाता है, जिसे खाने का विधान किया गया है।[46] माना यह जाता है कि अतिथि के लौटते समय आतिथ्यकर्ता को वहाँ तक साथ जाना चाहिए जहाँ अतिथि उन्हें लौटने के लिए कहता है। यह भी एक सामान्य शिष्टता व सदाचार है। इस प्रकार अन्य व्यवस्थाकारों की भाँति मनु ने भी गृहस्थों के लिए पञ्चमहायज्ञ के विधान को आवश्य बताया है तथा उसकी विस्तृत विवेचना की है। गृहस्थों के लौकिक और पारलौकिक सुखप्रदायक अनिवार्य आवश्यक घटक के रूप में इन पञ्च महायज्ञों की चर्चा की गई है जिसका उद्देश्य वैयक्तिक उन्नति के साथ-साथ समाज के प्रति अपने दायित्व का धर्मपूर्वक निर्वहण करना है।

सूत्र एवं स्मृतिकाल की भाँति पञ्च महायज्ञ का विधान एवं उसकी महत्ता आज भी प्रासंगिक है। लौकिक एवं पारलौकिक सुख-शान्ति के साथ-साथ नैतिकता, आचरण एवं कर्त्तव्यनिर्वहण की भवना से आप्लावित पञ्च महायज्ञ की अवधारणा प्रत्येक सभ्यता व संस्कृति के अनिवार्य घटक के रूप में स्वीकार्य हैं। यह मानव में मानवत्व का सन्धानकर मनुष्य में कर्त्तव्यकर्म की भावना को परिस्फुरित करनेवाला एवं उन्हें अन्तःप्रेरित करनेवाला सर्वग्राह्य धर्म है, अतः प्रत्येक युग में अनुकरणीय है।

सन्दर्भग्रन्थ-सूची

1. धर्मशास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), काणे, भारतरत्न महामहोपाध्याय डॉ- पाण्डुरंग वामन अनुवादक -

44 *वही*, 4/30

45 *वही*, 3/99, 3/101, 3/107

46 मनुस्मृति, 3/284

काश्यप, अर्जुन चौबे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1963.

2. मनुस्मृति, अनुवादक - चतुर्वेदी, डॉ- ज्वाला प्रसाद, रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन), हरिद्वार, द्वितीय संस्करण-1988.
3. मनुस्मृति (सप्तमाध्यायपर्यन्त), टीकाकार - जैन, डॉ- जयकुमार, साहित्य भण्डार मेरठ, प्रथम संस्करण-1983.
4. वाचस्पत्यम्, भट्टाचार्य, श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, 1969, द्वितीय से षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण-1970.
5. शब्दकल्पद्रुम (1-4 भाग), देव, राजा राधाकान्त, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, प्रथम पुनर्मुद्रित संस्करण, 1987.
6. संस्कृत-आंग्ल कोश, आप्टे, वामन शिवराम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वितीय संस्करण-1970.
7. संस्कृत-हिन्दी कोश, आप्टे, वामन शिवराम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1966.